

वैदिक ऋषि परम्परा में 'वसुधैव कुटुम्बकम्': सतत विकास हेतु एक दार्शनिक प्रतिमान

हिमांशु¹

प्राप्ति: 22 सितम्बर 2026 / संशोधित: 25 सितम्बर 2026 / स्वीकृत: 30 सितम्बर 2026 / प्रकाशित: 30 सितम्बर 2026
Copyright © 2026 Author(s). Published by Siri Research Foundation. This is an open access article distributed under the Creative Commons Attribution International License (CC BY 4.0).

सारांश

'वसुधैव कुटुम्बकम्' भारतीय वैदिक-उपनिषद् परम्परा की ऐसी विश्वदृष्टि है, जो मानव-जीवन को संकीर्ण स्वार्थ, जातीय सीमाओं, राष्ट्रीय अहंकार और उपभोगवादी प्रवृत्तियों से ऊपर उठाकर समस्त पृथ्वी को एक परिवार के रूप में देखने की प्रेरणा देती है। यह विचार केवल आध्यात्मिक आदर्श नहीं है, बल्कि मानव, प्रकृति, समाज और ब्रह्मांड के बीच अंतर्संबंधों की गहरी दार्शनिक समझ पर आधारित है। वैदिक ऋषियों ने जीवन को खंडों में नहीं, बल्कि समग्रता में देखा। उनके चिंतन में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, वनस्पति, पशु, मानव और देवत्व एक व्यापक ब्रह्मांडीय व्यवस्था के अंग हैं। इसी व्यवस्था को वैदिक साहित्य में 'ऋत' कहा गया है, जो प्राकृतिक, नैतिक और आध्यात्मिक संतुलन का आधार है। वर्तमान युग में जब मानव सभ्यता जलवायु परिवर्तन, पर्यावरणीय असंतुलन, आर्थिक विषमता, युद्ध, विस्थापन, संसाधनों के अंधाधुंध दोहन और सामाजिक विभाजन जैसी चुनौतियों से जूझ रही है, तब 'वसुधैव कुटुम्बकम्' सतत विकास के लिए एक वैकल्पिक दार्शनिक प्रतिमान प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द: वसुधैव कुटुम्बकम्, वैदिक ऋषि परम्परा, सतत विकास, ऋत, धर्म, यज्ञ, पर्यावरणीय नैतिकता, वैश्विक परिवार।

प्रस्तावना

मानव सभ्यता ने विज्ञान, तकनीक, चिकित्सा, संचार, उद्योग और शासन व्यवस्था के क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रगति की है। इस प्रगति ने मनुष्य को भौतिक सुविधा, गति, उत्पादन क्षमता और वैश्विक संपर्क के नए साधन दिए हैं। किंतु इसी विकास-यात्रा ने अनेक गहरे संकट भी उत्पन्न किए हैं। जलवायु परिवर्तन, जल-संकट, वायु प्रदूषण, जैव-विविधता का हास, आर्थिक असमानता, सांस्कृतिक संघर्ष और हिंसक राजनीति आधुनिक विकास मॉडल की सीमाओं को उजागर करते हैं। आज यह प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया है कि विकास का वास्तविक अर्थ क्या है? क्या विकास केवल उत्पादन और उपभोग की वृद्धि है? क्या आर्थिक समृद्धि पर्यावरणीय विनाश और सामाजिक विषमता की कीमत पर स्वीकार्य हो सकती है? क्या मनुष्य प्रकृति का स्वामी है या उसका उत्तरदायी सहभागी?

इन प्रश्नों के समाधान के लिए केवल तकनीकी उपाय पर्याप्त नहीं हैं। आवश्यकता एक ऐसे दार्शनिक और नैतिक आधार की है, जो मनुष्य को अपने अस्तित्व, प्रकृति और समाज के प्रति जिम्मेदार बनाए। भारतीय वैदिक ऋषि परम्परा इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। वैदिक ऋषियों ने जीवन को केवल भौतिक उपलब्धियों के आधार पर नहीं समझा,

1 शोध छात्र, अनुप्रयुक्त दर्शनशास्त्र विभाग, महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली, उत्तर प्रदेश, भारत

✉ हिमांशु, E-mail: himanshujaiswal311@gmail.com

बल्कि उसे धर्म, ऋत, यज्ञ, संयम, सह-अस्तित्व और लोकमंगल के व्यापक संदर्भ में देखा। उनके लिए संसार केवल वस्तुओं का समूह नहीं, बल्कि संबंधों का जीवंत तंत्र था। इसी वैदिक-उपनिषद् परम्परा में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का महान सूत्र मिलता है। यह सूत्र महा उपनिषद् में वर्णित है, जहाँ कहा गया है कि 'यह अपना है और वह पराया है'—ऐसा विचार संकीर्ण बुद्धि वाले लोगों का है; उदार चरित्र वाले लोगों के लिए तो पूरी पृथ्वी ही परिवार है। **विवेकानंद इंटरनेशनल फाउंडेशन** के सम्मेलन की कार्यवाही में भी स्पष्ट किया गया है कि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' महा उपनिषद् (VI.71-73) में मिलता है और यह जीवन्मुक्ति तथा ब्रह्मस्थिति के संदर्भ में उदारता और विश्व-एकता की चेतना को व्यक्त करता है।¹

शोध-पद्धति

प्रस्तुत अध्ययन मूलतः वैचारिक एवं दार्शनिक विश्लेषण पर आधारित है। अध्ययन में वैदिक एवं उपनिषद् साहित्य, विशेषतः अथर्ववेद के भूमिसूक्त और महा उपनिषद् में प्रतिपादित 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा का प्राथमिक स्रोतों के आधार पर विश्लेषण किया गया है। इसके साथ सतत विकास की आधुनिक अवधारणा को समझने के लिए ब्रंटलैंड रिपोर्ट (Brundtland Report) तथा संयुक्त राष्ट्र के Sustainable Development Goals से संबंधित आधिकारिक दस्तावेजों का उपयोग किया गया है। अध्ययन में तुलनात्मक एवं व्याख्यात्मक पद्धति के माध्यम से वैदिक दार्शनिक अवधारणाओं और समकालीन सतत विकास विमर्श के बीच अंतर्संबंधों का परीक्षण किया गया है।

वैदिक ऋषि परम्परा का स्वरूप

वैदिक ऋषि परम्परा भारतीय ज्ञान-परम्परा की मूल चेतना का प्रतिनिधित्व करती है। ऋषि केवल धार्मिक अनुष्ठानों के संचालक नहीं थे; वे प्रकृति के सूक्ष्म पर्यवेक्षक, जीवन के दार्शनिक व्याख्याकार, समाज के नैतिक मार्गदर्शक और ब्रह्मांडीय सत्य के साधक थे। उनके लिए ज्ञान का अर्थ केवल सूचना या बौद्धिक तर्क नहीं था, बल्कि जीवन को उसके समग्र स्वरूप में समझना था। वैदिक ऋषियों ने मानव को प्रकृति से अलग और श्रेष्ठ सत्ता के रूप में नहीं देखा। उन्होंने मनुष्य को सृष्टि के व्यापक तंत्र का अंग माना। वैदिक साहित्य में सूर्य, अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी, उषा, वनस्पति और नदियों के प्रति जो स्तुति मिलती है, वह केवल धार्मिक आस्था नहीं, बल्कि प्रकृति के प्रति कृतज्ञता और निर्भरता की स्वीकारोक्ति है। ऋषि जानते थे कि मानव जीवन पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि के बिना असंभव है। इसलिए उनके चिंतन में प्रकृति के प्रति सम्मान और मर्यादा का भाव केंद्रीय है। वैदिक परम्परा की एक प्रमुख अवधारणा 'ऋत' है। ऋत का अर्थ है—ब्रह्मांडीय व्यवस्था, प्राकृतिक नियमबद्धता और नैतिक संतुलन। सूर्य का उदय, ऋतुओं का परिवर्तन, जल का प्रवाह, बीज का अंकुरण और जीवन का चक्र इसी ऋत के अंतर्गत समझा गया। जब मनुष्य इस व्यवस्था के अनुकूल जीवन जीता है, तब संतुलन बना रहता है; जब वह लोभ, हिंसा और अति-उपभोग के कारण इसे तोड़ता है, तब संकट उत्पन्न होता है। आज के पर्यावरणीय संकट को इसी दृष्टि से समझा जा सकता है।

'वसुधैव कुटुम्बकम्' का दार्शनिक अर्थ

'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सामान्य अर्थ है—समस्त पृथ्वी एक परिवार है। किंतु इसका दार्शनिक अर्थ इससे कहीं अधिक गहरा है। यह विचार मनुष्य की चेतना को 'मैं' से 'हम' और 'हम' से 'समस्त अस्तित्व' तक विस्तृत करता है। यह सीमित स्वार्थ से सार्वभौमिक आत्मीयता की यात्रा है। परिवार का अर्थ केवल रक्त-संबंध नहीं होता। परिवार वह व्यवस्था है जिसमें परस्पर सहयोग, संरक्षण, दायित्व, प्रेम और सह-अस्तित्व होता है। यदि पृथ्वी परिवार है, तो मनुष्य केवल उपभोक्ता नहीं रह जाता; वह पृथ्वी-परिवार का उत्तरदायी सदस्य बन जाता है। इस परिवार में केवल मनुष्य ही नहीं, बल्कि पशु, पक्षी, वृक्ष, नदियाँ, पर्वत, जल, वायु और भविष्य की पीढ़ियाँ भी सम्मिलित हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' संकीर्णता का अतिक्रमण करता है। यह जाति, धर्म, राष्ट्र, भाषा, वर्ण, वर्ग और आर्थिक स्थिति के आधार पर बने अहंकारों को व्यापक मानवता में रूपांतरित करता है। इसका अर्थ यह नहीं कि स्थानीय पहचानें समाप्त हो जाती हैं। इसका अर्थ यह है कि सभी पहचानें व्यापक जीवन-संबंधों के भीतर संतुलित रहती हैं। व्यक्ति अपने परिवार से प्रेम कर सकता है, अपने समाज से जुड़ सकता है, अपने राष्ट्र के प्रति उत्तरदायी हो सकता है; परंतु यह सब पृथ्वी और मानवता के व्यापक हित के विरुद्ध नहीं होना चाहिए।

सतत विकास की आधुनिक अवधारणा

आधुनिक अर्थ में सतत विकास का प्रमुख सूत्र ब्रंटलैंड रिपोर्ट यानी Our Common Future से जुड़ा है। इस रिपोर्ट ने सतत विकास को वर्तमान आवश्यकताओं और भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं के बीच संतुलन के रूप में समझाया। रिपोर्ट यह भी स्पष्ट करती है कि गरीबी, पर्यावरणीय क्षरण और जनसंख्या जैसी समस्याएँ परस्पर जुड़ी हुई हैं और इन्हें अलग-अलग हल नहीं किया जा सकता।²

सतत विकास के तीन प्रमुख स्तंभ माने जाते हैं—आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय और पर्यावरण संरक्षण।³ संयुक्त राष्ट्र के अनुसार 2030 Agenda सभी सदस्य देशों द्वारा 2015 में अपनाया गया और इसके केंद्र में 17 सतत विकास लक्ष्य हैं, जो Peace, Prosperity, People और Planet के लिए साझा रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं।⁴ UNDP भी स्पष्ट करता है कि ये लक्ष्य समग्र रूप से जुड़ा हुआ हैं और विकास को सामाजिक, आर्थिक तथा पर्यावरणीय स्थिरता के संतुलन में देखना चाहिए।⁵ फिर भी आधुनिक सतत विकास की अवधारणा की कुछ सीमाएँ हैं। यह कई बार उसी आर्थिक ढाँचे के भीतर समाधान खोजती है जिसने संकट पैदा किया है। आधुनिक विकास मॉडल में लगातार उत्पादन, लगातार उपभोग और लगातार बाजार-विस्तार को सफलता का संकेत माना जाता है। इससे संसाधनों पर दबाव बढ़ता है और असमानता भी गहरी होती है। वैदिक दृष्टि इसीलिए अधिक गहरी है। वह कहती है कि विकास केवल बाहर की संरचनाओं का नहीं, भीतर की चेतना का भी प्रश्न है।

वैदिक प्रकृति-दृष्टि: संसाधन नहीं, संबंध

वैदिक साहित्य में प्रकृति को केवल भौतिक संसाधन नहीं माना गया। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति को जीवनदायिनी शक्तियों के रूप में देखा गया। अथर्ववेद के भूमिसूक्त में पृथ्वी के प्रति मातृभाव अत्यंत सुंदर रूप में व्यक्त हुआ है—“माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।” इसका अर्थ है—पृथ्वी माता है और मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ। Atharva Veda Book XII, Hymn 1, Verse 12 में यह भाव स्पष्ट रूप से मिलता है; ब्लूमफिल्ड के अनुवाद में भी “The earth is the mother, and I the son of the earth” रूप में इसका अर्थ दिया गया है।⁶ यह कथन पर्यावरणीय नैतिकता का आधार बन सकता है। यदि पृथ्वी माता है, तो उसका विनाश केवल संसाधन-क्षति नहीं, बल्कि नैतिक अपराध है। यदि नदियाँ जीवनदायिनी हैं, तो उनका प्रदूषण केवल प्रशासनिक समस्या नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और नैतिक विफलता है। यदि वन और जीव-जगत पृथ्वी-परिवार के सदस्य हैं, तो उनका विनाश मनुष्य की आत्म-विनाशक प्रवृत्ति का संकेत है। आधुनिक सभ्यता ने प्रकृति को वस्तु में बदल दिया है। भूमि अचल संपत्ति बन गई, नदियाँ औद्योगिक अपशिष्ट की वाहक बन गईं, जंगल लकड़ी और खनिज के भंडार बन गए, और पशु उत्पादन-प्रणाली के उपकरण बन गए। वैदिक दृष्टि इस वस्तुकरण का विरोध करती है। वह प्रकृति को संबंध, सम्मान और कर्तव्य के रूप में समझती है। यही दृष्टि सतत विकास का नैतिक आधार बन सकती है।

यज्ञ-भावना और सतत विकास

वैदिक जीवन में यज्ञ का विशेष स्थान है। सामान्यतः यज्ञ को अग्नि में आहुति देने की धार्मिक क्रिया माना जाता है, परंतु इसका दार्शनिक अर्थ कहीं अधिक व्यापक है। यज्ञ का अर्थ है—त्याग, सहभागिता, परस्पर निर्भरता और लोकमंगल। यह जीवन के उस सिद्धांत को व्यक्त करता है जिसमें मनुष्य केवल लेने वाला नहीं, बल्कि देने वाला भी है। मनुष्य प्रकृति से जल, वायु, अन्न, ऊर्जा और जीवन प्राप्त करता है। यदि वह केवल ग्रहण करता रहे और प्रकृति को लौटाए कुछ नहीं, तो संतुलन टूटता है। यही आज की पर्यावरणीय समस्या का मूल है। यज्ञ-भावना बताती है कि जीवन परस्पर आदान-प्रदान पर आधारित है। लेना और देना, अधिकार और कर्तव्य, उपभोग और संरक्षण—इन सबका संतुलन आवश्यक है। सतत विकास भी यही कहता है कि संसाधनों का उपयोग उनकी पुनरुत्पादन क्षमता को नष्ट किए बिना किया जाए। ब्रंटलैंड आयोग की रिपोर्ट के संदर्भ में यह बात स्पष्ट करती है कि उनका उपयोग पुनर्जनन और प्राकृतिक वृद्धि की सीमा के भीतर होना चाहिए तथा सम्पूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र के प्रभाव को ध्यान में रखना चाहिए।⁷ यह विचार वैदिक यज्ञ-भावना से मेल खाता है।

धर्म, संयम और नैतिक अर्थव्यवस्था

भारतीय चिंतन में धर्म का अर्थ केवल पूजा-पद्धति नहीं है। धर्म वह सिद्धांत है जो जीवन, समाज और प्रकृति को संतुलित रखता है। धर्म व्यक्ति को केवल अधिकार नहीं देता, बल्कि कर्तव्य भी याद दिलाता है। यही कर्तव्य-बोध सतत विकास का नैतिक आधार है। भारतीय दर्शन में चार पुरुषार्थ माने गए हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्षा। इनमें अर्थ को अस्वीकार नहीं किया गया, परंतु अर्थ को धर्म के अधीन रखा गया। इसका अर्थ है कि आर्थिक विकास आवश्यक है, परंतु वह न्याय, मर्यादा और लोककल्याण से अलग नहीं हो सकता। जब अर्थ धर्म से अलग हो जाता है, तब लोभ, शोषण, असमानता और हिंसा जन्म लेते हैं। जब अर्थ धर्म से जुड़ा रहता है, तब वह समाज-कल्याण, दान, सहयोग और संतुलित जीवन का साधन बनता है। आधुनिक अर्थव्यवस्था में GDP, उत्पादन और उपभोग को विकास का प्रमुख मापदंड माना जाता है। किंतु यह मापदंड जीवन की गुणवत्ता, सामाजिक संबंध, पर्यावरणीय स्वास्थ्य और मानसिक शांति को पर्याप्त महत्व नहीं देता। वैदिक दृष्टि बताती है कि अर्थव्यवस्था का उद्देश्य मनुष्य को लोभी उपभोक्ता बनाना नहीं, बल्कि संतुलित, उत्तरदायी और करुणामय सामाजिक प्राणी बनाना है।

सामाजिक न्याय और वैश्विक आत्मीयता

‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ केवल प्रकृति-दृष्टि नहीं है; यह सामाजिक न्याय का भी आधार है। यदि पूरी पृथ्वी परिवार है, तो किसी भी व्यक्ति या समुदाय की पीड़ा केवल उसकी निजी समस्या नहीं रह जाती। भूख, गरीबी, अशिक्षा, बीमारी, युद्ध और विस्थापन मानव-परिवार की सामूहिक समस्या बन जाते हैं।

सतत विकास तभी संभव है जब समाज में अवसरों का न्यायपूर्ण वितरण हो। अत्यधिक विषमता, संसाधनों का केंद्रीकरण और सामाजिक बहिष्कार विकास को असतत बनाते हैं। UN सतत विकास लक्ष्यों में गरीबी उन्मूलन, स्वास्थ्य, शिक्षा, असमानता में कमी और जलवायु परिवर्तन के विरुद्ध कार्रवाई शामिल हैं। और वैश्विक साझेदारी को एक-दूसरे से जुड़ा हुआ मानते हैं।⁸ यह दृष्टि ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ की आधुनिक संस्थागत अभिव्यक्ति कही जा सकती है।⁹ भारतीय परम्परा में “सर्वे भवन्तु सुखिनः” की भावना भी इसी सामाजिक नैतिकता को व्यक्त करती है। यह प्रार्थना केवल व्यक्ति की मुक्ति नहीं चाहती, बल्कि सभी के सुख, स्वास्थ्य और मंगल की कामना करती है। यहाँ ‘सभी’ का अर्थ केवल अपने समुदाय या राष्ट्र तक सीमित नहीं है। यह सार्वभौमिक कल्याण की भावना है।

आधुनिक संकटों के संदर्भ में ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’

आज की दुनिया में समस्याएँ अंतरराष्ट्रीय और अंतर्संबंधित हैं। जलवायु परिवर्तन का प्रभाव किसी एक देश तक सीमित नहीं रहता। एक क्षेत्र में वनों की कटाई दूसरे क्षेत्रों में जलवायु और वर्षा-चक्र को प्रभावित कर सकती है। समुद्र-स्तर वृद्धि तटीय समाजों को विस्थापित करती है। प्रदूषण, महामारी, खाद्य-संकट और जल-संकट भी वैश्विक रूप लेते हैं। ऐसे समय में ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ यह बताता है कि पृथ्वी पर कोई भी समाज पूर्णतः अलग नहीं है। हम सभी एक साझा नियति से जुड़े हुए हैं। भारत की सभ्यतागत दृष्टि विश्व को परिवार के रूप में देखने की रही है।¹⁰ यह विचार सतत विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि सतत भविष्य किसी एक राष्ट्र के प्रयास से संभव नहीं होगा। ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ आधुनिक राष्ट्र-राज्य की व्यावहारिक चुनौतियों को नकारता नहीं है। यह मानता है कि सुरक्षा, सीमा, नीति और आर्थिक हित महत्वपूर्ण हैं। किंतु यह इन सबको मानवता और पृथ्वी के व्यापक हित के अधीन रखने की बात करता है। यदि राष्ट्र केवल अपने अल्पकालिक हितों को देखें और वैश्विक पर्यावरणीय उत्तरदायित्व की उपेक्षा करें, तो अंततः वे स्वयं भी सुरक्षित नहीं रह पाएँगे।

शिक्षा में ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ की उपयोगिता

सतत विकास की सफलता शिक्षा पर निर्भर करती है। यदि शिक्षा केवल नौकरी, प्रतिस्पर्धा और आर्थिक सफलता तक सीमित रहेगी, तो वह पूर्ण मनुष्य का निर्माण नहीं कर पाएगी। वैदिक शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में विवेक, संयम, आत्मानुशासन, करुणा, सत्यनिष्ठा और लोकमंगल की भावना विकसित करना था। आज शिक्षा में पर्यावरणीय चेतना, नैतिक निर्णय-क्षमता, वैश्विक नागरिकता और सांस्कृतिक सहिष्णुता को शामिल करना आवश्यक है। विद्यार्थियों को यह समझाना होगा कि पृथ्वी केवल उपभोग की वस्तु नहीं, बल्कि साझा घर है। जल बचाना, वृक्ष लगाना, प्रदूषण कम

करना, समानता का सम्मान करना और कमजोर वर्गों के प्रति संवेदनशील होना केवल सामाजिक सेवा नहीं, बल्कि पृथ्वी-परिवार के प्रति उत्तरदायित्व है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' शिक्षा को सूचना से ज्ञान और ज्ञान से प्रज्ञा की ओर ले जा सकता है। सूचना व्यक्ति को दक्ष बनाती है, ज्ञान उसे समझदार बनाता है, परंतु प्रज्ञा उसे उत्तरदायी बनाती है। सतत विकास के लिए केवल दक्षता नहीं, प्रज्ञा आवश्यक है।

आलोचनात्मक विवेचन: आदर्श और व्यवहार

'वसुधैव कुटुम्बकम्' एक उदात्त आदर्श है। किंतु इसके साथ यह आलोचनात्मक प्रश्न भी उठता है कि क्या इसे आधुनिक विश्व-राजनीति और अर्थव्यवस्था में लागू किया जा सकता है? आज की दुनिया शक्ति-राजनीति, पूँजी, सैन्य हितों, बाजार और राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा से संचालित होती है। ऐसे में पूरी पृथ्वी को परिवार मानने की बात कई लोगों को आदर्शवादी लग सकती है।

यह आलोचना पूरी तरह निराधार नहीं है। **वीआईएफ की कार्यवाही** में भी इस बात पर चर्चा मिलती है कि अंतरराष्ट्रीय संबंधों में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को **पारस्परिक सद्गुण और आत्मसंयम-** के संदर्भ में समझना होगा; कठोर शक्ति और वैचारिक विशिष्टतावाद इसकी व्यावहारिक चुनौतियाँ हैं।¹¹ इसका अर्थ है कि इस सिद्धांत को अंधे आदर्शवाद के रूप में नहीं, बल्कि विवेकपूर्ण नैतिक प्रतिमान के रूप में अपनाना चाहिए। सच्चाई यह है कि हर बड़ा सामाजिक परिवर्तन पहले विचार के रूप में ही आता है। मानवाधिकार, लोकतंत्र, दासप्रथा-विरोध, लैंगिक समानता और पर्यावरणीय न्याय भी कभी आदर्शवादी विचार माने जाते थे। धीरे-धीरे वे संस्थागत और नीतिगत ढाँचे का हिस्सा बने। इसी प्रकार 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को भी केवल नारे के रूप में नहीं, बल्कि नीति, शिक्षा, अर्थव्यवस्था और पर्यावरणीय शासन के आधार के रूप में विकसित करना होगा।

सतत विकास हेतु वैदिक दार्शनिक प्रतिमान

'वसुधैव कुटुम्बकम्' सतत विकास के लिए पाँच स्तरों पर दार्शनिक प्रतिमान प्रस्तुत करता है। पहला, यह मानव-केंद्रित विकास के स्थान पर जीवन-केंद्रित विकास की बात करता है। आधुनिक विकास अक्सर मनुष्य की सुविधा को केंद्र में रखता है, परंतु वैदिक दृष्टि समस्त जीव-जगत के कल्याण को महत्व देती है।

दूसरा, यह अधिकार के साथ कर्तव्य को जोड़ता है। आधुनिक समाज में अधिकारों की चर्चा आवश्यक है, परंतु यदि कर्तव्य-बोध न हो, तो अधिकार स्वार्थ में बदल सकते हैं। पृथ्वी, समाज और भविष्य की पीढ़ियों के प्रति कर्तव्य सतत विकास का मूल है। तीसरा, यह उपभोग के स्थान पर संयम को महत्व देता है। संयम अति-उपभोग को नियंत्रित करता है और संसाधनों के न्यायपूर्ण उपयोग की दिशा देता है।

चौथा, यह प्रतिस्पर्धा के स्थान पर सहयोग को बढ़ावा देता है। सतत विकास वैश्विक सहयोग के बिना संभव नहीं है। पाँचवाँ, यह प्रकृति-विमुख विकास के स्थान पर प्रकृति-सम्मत विकास की स्थापना करता है। इसमें विकास का अर्थ प्रकृति पर विजय नहीं, बल्कि प्रकृति के साथ संतुलित सह-अस्तित्व है।

नीति-निर्माण में उपयोगिता

यदि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को नीति-निर्माण में आधार बनाया जाए, तो विकास की दिशा अधिक संतुलित और मानवीय हो सकती है। पर्यावरण नीति में प्रकृति को केवल संसाधन न मानकर जीवन-तंत्र माना जाएगा। जल, वन, भूमि और जैव-विविधता की रक्षा को विकास-विरोधी नहीं, बल्कि विकास की अनिवार्य शर्त माना जाएगा।

आर्थिक नीति में असमानता कम करने, स्थानीय समुदायों को सशक्त करने और संसाधनों के न्यायपूर्ण वितरण पर बल दिया जाएगा। शहरी विकास में केवल सड़क, भवन और उद्योग को विकास नहीं माना जाएगा; स्वच्छ वायु, जल-संरक्षण, हरित क्षेत्र और सामुदायिक जीवन भी विकास के मानदंड बनेंगे।

अंतरराष्ट्रीय संबंधों में शक्ति और व्यापार के साथ-साथ जलवायु न्याय, मानवीय सहयोग और वैश्विक उत्तरदायित्व को महत्व दिया जाएगा। यह दृष्टि संयुक्त राष्ट्र के लक्ष्य 17 एवं वैश्विक साझेदारी से भी जुड़ती है, जिसमें कार्यान्वयन और वैश्विक साझेदारी को सतत विकास की शर्त माना गया है।¹²

निष्कर्ष

‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ वैदिक ऋषि परम्परा की ऐसी अमूल्य देन है, जो वर्तमान वैश्विक संकटों के बीच नई दिशा प्रदान करती है। यह विचार बताता है कि पृथ्वी केवल मनुष्यों की संपत्ति नहीं, बल्कि सभी जीवों का साझा घर है। मनुष्य इस घर का स्वामी नहीं, बल्कि उत्तरदायी सदस्य है। सतत विकास की आधुनिक अवधारणा आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय और पर्यावरण संरक्षण के संतुलन पर आधारित है। किंतु यह संतुलन तभी स्थायी हो सकता है जब मनुष्य की चेतना में परिवर्तन आए। वैदिक ऋषि परम्परा इस चेतना-परिवर्तन का मार्ग दिखाती है। ऋतु हमें ब्रह्मांडीय व्यवस्था का सम्मान सिखाता है; धर्म हमें कर्तव्य और मर्यादा का बोध कराता है; यज्ञ हमें त्याग और परस्परता की शिक्षा देता है; और ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ हमें समस्त पृथ्वी के प्रति आत्मीयता का भाव देता है। आज आवश्यकता है कि इस सिद्धांत को केवल भाषणों, नारों या सांस्कृतिक प्रतीकों तक सीमित न रखा जाए। इसे शिक्षा, नीति, अर्थव्यवस्था, पर्यावरणीय प्रबंधन और अंतरराष्ट्रीय संबंधों में व्यवहारिक रूप दिया जाए। यदि मानवता वास्तव में सतत भविष्य चाहती है, तो उसे विकास की दिशा को बाहरी विस्तार से आंतरिक संतुलन की ओर मोड़ना होगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ केवल भारतीय संस्कृति का आदर्श वाक्य नहीं, बल्कि सतत विकास हेतु एक गहन, समग्र और मानवीय दार्शनिक प्रतिमान है।

पाद टिप्पणी

1. Vivekananda International Foundation, Vasudhaiva Kutumbakam: Conference Proceedings, Concept Note, pp. 7–8. इस स्रोत में ‘Vasudhaiva Kutumbakam’ को Maha Upanishad VI.71–73 से सम्बद्ध बताया गया है। URL: <https://www.vifindia.org/sites/default/files/Vasudhaiva-Kutumbakam-Conference-Proceedings.pdf>
2. World Commission on Environment and Development, Our Common Future / Brundtland Report, Chapter 2, ‘Towards Sustainable Development,’ PDF p. 11. रिपोर्ट poverty, environmental degradation और population growth को परस्पर सम्बद्ध मानती है। URL: https://gat04-live-1517c8a4486c41609369c68f30c8-aa81074.divio-media.org/filer_public/6f/85/6f854236-56ab-4b42-810f-606d215c0499/cd_9127_extract_from_our_common_future_brundtland_report_1987_foreword_chpt_2.pdf
3. United Nations Development Programme के अनुसार SDGs को 2015 में गरीबी समाप्त करने, पृथ्वी की रक्षा करने और 2030 तक शांति एवं समृद्धि सुनिश्चित करने के वैश्विक आह्वान के रूप में अपनाया गया; UNDP यह भी कहता है कि 17 SDGs integrated हैं और विकास को सामाजिक, आर्थिक तथा पर्यावरणीय स्थिरता के संतुलन में देखना चाहिए। URL: <https://www.undp.org/sustainable-development-goals>
4. United Nations, ‘The 17 Sustainable Development Goals,’ official SDG portal. UN के अनुसार 2030 Agenda को 2015 में सभी सदस्य देशों ने अपनाया और इसके केंद्र में 17 SDGs हैं। URL: <https://sdgs.un.org/goals>
5. United Nations Development Programme, ‘Sustainable Development Goals.’ UNDP के अनुसार SDGs integrated हैं और विकास को social, economic और environmental sustainability के संतुलन में देखना चाहिए। URL: <https://www.undp.org/sustainable-development-goals>
6. Atharva Veda, Book XII, Hymn 1, Verse 12. Maurice Bloomfield के अनुवाद में इस मंत्र का भाव “The earth is the mother, and I the son of the earth” रूप में दिया गया है। URL: <https://sacred-texts.com/hin/sbe42/av208.htm>
7. Brundtland Report, Chapter 2, PDF p. 11. रिपोर्ट renewable resources के उपयोग को regeneration और natural growth की सीमा में रखने तथा ecosystem-wide effects को ध्यान में रखने की बात करती है।
8. United Nations SDG portal के अनुसार SDGs poverty और deprivations को health, education, inequality reduction, economic growth, climate action और oceans/forests preservation से जोड़कर देखते हैं। URL: <https://sdgs.un.org/goals>
9. VIF Conference Proceedings, Concept Note, pp. 7–8. इस स्रोत में ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ को international peace-building, conflict resolution, environment saving और international cooperation से जोड़कर समझने की आवश्यकता पर चर्चा की गई है।
10. VIF Conference Proceedings, pp. 5–6. इसमें कहा गया है कि हमारी destinies linked together हैं और भारत की सभ्यतागत दृष्टि विश्व को परिवार के रूप में देखने की रही है।

11. VIF Conference Proceedings, pp. 20–21. यहाँ international diplomacy में ‘Vasudhaiva Kutumbakam’ को reciprocal virtue, self-restraint और hard power की चुनौतियों के संदर्भ में समझाया गया है।
12. United Nations SDG portal, Goal 17: ‘Strengthen the means of implementation and revitalize the Global Partnership for Sustainable Development.’ URL: <https://sdgs.un.org/goals>

संदर्भ ग्रंथ सूची

- Atharva Veda. *Atharva-Veda: Sacred Books of the East*. Translated by Maurice Bloomfield. Vol. 42. Oxford: Clarendon Press, 1897.
- Griffith, Ralph T. H., trans. *The Rig Veda*. Benares: E. J. Lazarus and Co., 1896.
- Kane, P. V. *History of Dharmasastra*, Vol. II. Bhandarkar Oriental Research Institute.
- Radhakrishnan, S. *Indian Philosophy*, Vol. I. Oxford University Press.
- Sharma, Chandradhar. *A Critical Survey of Indian Philosophy*. Motilal Banarsidass.
- United Nations Department of Economic and Social Affairs. “The 17 Sustainable Development Goals.” *United Nations Sustainable Development Goals*. <https://sdgs.un.org/goals>
- United Nations Development Programme. “Sustainable Development Goals.” *United Nations Development Programme*. <https://www.undp.org/sustainable-development-goals>
- Vivekananda International Foundation. *Vasudhaiva Kutumbakam: Conference Proceedings*. New Delhi: VIF, 2019. Relevant pages: pp. 5–8, 20–21.
- World Commission on Environment and Development. *Our Common Future*. Oxford University Press / United Nations, 1987.